प्राक्कथन

वैश्विक वित्तीय संकट, जिसकी तुलना गहनता और प्रभावों के मामले में 1930 के दशक की महामंदी से की गई है, में हाल में कमी आने के संकेत दिखाई देने लगे हैं। जो संकट अगस्त 2007 में अमेरिका में सब-प्राइम मार्टगेज क्षेत्र के अत्यंत सीमित दायरे में पैदा हुआ था, उसने लेहमन ब्रदर्स के धराशायी होने के बाद सितंबर 2008 में वैश्विक वित्तीय संकट का रूप ले लिया। यूरोप की हाल की गतिविधियों से यह संकेत मिलता है कि विश्व अर्थव्यवस्था में अभी भी कुछ कमजोर पहलू मौजूद हैं।

अच्छी बात यह है कि हम पीछे मुड़कर कुछ सबक ले सकते हैं। संबंधित वित्तीय साहित्य में कई समष्टि आर्थिक और व्यष्टि आर्थिक तत्त्वों की पहचान इस संकट के प्रत्यक्ष कारण के रूप में की गई है, जिनमें शामिल हैं - आसानी से उपलब्ध धन की भूमिका, वैश्विक असंतुलन, वित्तीय नवोन्मेष तथा राष्ट्रीय और वैश्विक - दोनों स्तरों पर विनियामक और पर्यवेक्षी कमियां। अतीत के वित्तीय संकटों से संबंधित कई बातों से वर्तमान संकट की तुलना करने पर यह स्पष्ट होता है कि उनके अंतर्निहित कारणों के संबंध में कुछ समानताएं पायी जा सकती हैं।

लेकिन प्रभावों की दृष्टि से पहले के वित्तीय संकटों की तुलना में हाल के वित्तीय संकट का प्रभाव अधिक व्यापक रहा है। वैश्विक वित्तीय बाजारों के प्राय: सभी क्षेत्रों ने वित्तीय संकट के आघात महसूस किये, भले ही उनकी तीव्रता कम या अधिक रही हो। उभरती अर्थव्यवस्था वाले देशों में अंतर-बैंक बाजारों पर सबसे पहले चलनिधि की भारी कमी के रूप में प्रभाव दृष्टिगोचर हुए क्योंकि बैंकों ने, प्रतिपक्षियों की ओर से पैदा होने वाले जोखिमों के डर से, एक दूसरे को उधार देने के प्रति अरुचि दिखानी शुरू कर दी। वैश्विक वित्तीय मंदी से पैदा होने वाले समष्टि आर्थिक उथल-पुथल का दुष्प्रभाव उभरती अर्थव्यवस्था वाले देशों पर भी पड़ा। इस संकट के समाधान के लिए देश के भीतर और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी अभूतपूर्व नीतिगत उपाय किए गए। पूरे विश्व में मौद्रिक प्राधिकारियों ने अपनी परंपरागत भूमिका से बहुत आगे बढ़कर कदम उठाए तथा संकट से उबरने के लिए बहुत अधिक वित्तीय पैकेज उपलब्ध कराए, तथा उन्होंने यह काम इतने व्यापक स्तर पर किया कि नीतिगत दरों में अभूतपूर्व कमी आ गई। ऐसा प्रतीत होता है कि सशक्त और सुनियोजित नीतिगत उपायों के कारण आर्थिक महाविपत्ति रोकने में सफलता मिली। भारत इनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका और वैश्विक गतिविधियों ने वर्ष 2008-09 की दूसरी छमाही में हमारी वित्तीय तथा वास्तविक गतिविधियों पर प्रभाव डाला।

प्रत्येक संकट से हमें बहुत बड़े-बड़े सबक मिलते हैं। इस संकट से यह बात उभरकर सामने आयी कि हमें कुछ नयी विनियामक और पर्यवेक्षी संस्थाओं की जरूरत है तथा पूरी प्रणाली को लक्ष्य करके कुछ निश्चित कदम उठाए जाने चाहिए, केंद्रीय बैंकों के लिए कुछ नये उद्देश्य होने चाहिए, केंद्रीय बैंक के कामकाज में सूचनाओं के आदान-प्रदान, पारदर्शिता और समन्वयन का बड़ा महत्त्व है, अंतरराष्ट्रीय वित्तीय ढांचे को एक नया स्वरूप दिया जाना चाहिए और उभरती बाजार अर्थव्यवस्था वाले देशों द्वारा अपनाए गए कुछ सुरक्षात्मक उपायों में फिर से विश्वास पैदा करने की जरूरत है। इस संकट ने वैश्विक संकटों को रोकने तथा उनके प्रबंधन की दृष्टि से वर्तमान अंतरराष्ट्रीय वित्तीय ढांचे की पर्याप्तता तथा सक्षमता के बारे में सवाल खड़े कर दिए हैं। वस्तुत: अमेरिका के सब-प्राइम संकट ने जिस गति तथा तीव्रता से वैश्विक वित्तीय संकट का रूप तथा बाद में वैश्विक आर्थिक संकट का रूप धारण कर लिया, उसने समष्टि अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ सिद्धांतों के बारे में बिल्कुल नयी बहस छेड़ दी है और बाजार व्यवस्था के स्वत:-सुधार संबंधी सुस्थापित विचारों और सरकारी नीति की भूमिका के लिए चुनौती खड़ी कर दी है। इस संकट की गहनता और व्यापकता ने पूरी दुनिया में नीति-निर्माताओं के पास उपलब्ध परंपरागत और गैर-परंपरागत नीतिगत विकल्पों की सीमाओं की परीक्षा भी ले ली है।

इस पृष्ठभूमि में यह महसूस किया गया कि वैश्विक अर्थव्यवस्था पर और, विशेष रूप से भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों के वस्तुनिष्ठ आकलन पर चिंतन किया जाए और नीति के संबंध में कुछ सीख ली जाए। **तदनुसार वर्ष 2008-09 की इस रिपोर्ट की थीम " वैश्विक वित्तीय संकट और भारतीय अर्थव्यवस्था" चुनी गयी।** इस रिपोर्ट में संकट के कारणों, किए गए नीतिगत उपायों तथा वैश्विक और भारतीय अर्थव्यवस्था पर उसके प्रभावों का गहन विश्लेषण किया गया है।

यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि वर्ष 1998-99 से मुद्रा और वित्त की रिपोर्ट किसी-न-किसी थीम पर आधारित है। अब तक 9 रिपोर्टें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनका विवरण नीचे दिया गया है:

	वर्ष	थीम
1.	1998-99	भारतीय अर्थव्यवस्था का संरचनात्मक रूपांतरण
2.	1999-2000	वित्तीय क्षेत्र और बाजार एकीकरण
3.	2000-01	वृद्धि का पुनरुज्जीवन
4.	2001-02	सुधार की प्रक्रिया और इसके परिणामों का मूल्यांकन
5.	2002-03	मुक्त अर्थव्यवस्था के ढांचे में बाह्य क्षेत्र का प्रबंधन
6.	2003-04	मौद्रिक नीति का क्रमिक विकास
7.	2004-05	भारत में केंद्रीय बैंकिंग का क्रमिक विकास
8.	2005-06	वित्तीय बाजारों का विकास और केंद्रीय बैंक की भूमिका
9.	2006-07 और 2007-08	भारत में बैंकिंग क्षेत्र : उभरते मुद्दे और चुनौतियां
10.	2008-09 (वर्तमान)	वैश्विक वित्तीय संकट और भारतीय अर्थव्यवस्था

यह रिपोर्ट आर्थिक विश्लेषण और नीति विभाग में श्री दीपक मोहंती, कार्यपालक निदेशक के समग्र पर्यवेक्षण और मार्गनिर्देशन में अधिकारियों के एक दल द्वारा तैयार की गई है जिसका नेतृत्व श्री एस.वी.एस.दीक्षित, परामर्शदाता और डॉ.राजीव रंजन, निदेशक ने किया। कोर टीम में जीवन के. खुंद्राकपम, रेखा मिश्र, भूपाल सिंह, सुनील कुमार, अभिमान दास, एस.सी.धल, अनुपम प्रकाश, राजीव जैन, अत्रि मुखर्जी, सौरभ घोष, संगीता मिश्र, एस.एम.लोकरे, पंकज कुमार, राकेश कुमार, सुब्रत सीत, एन. अरुण विष्णुकुमार, इंद्रजित राय और एस. सुराज शामिल थे। अन्य विभागों के अधिकारियों द्वारा उपलब्ध करायी गयी बहुमूल्य सामग्री अत्यंत प्रशंसनीय है।

रिपोर्ट में उठाए गए बहुत से मुद्दे अभी भी उभरकर सामने आ रहे हैं तथा उन मुद्दों के स्थिर होने में अभी कुछ और समय लगेगा। युवा अर्थशास्त्रियों के जिस समूह ने एक सूक्ष्म संतुलन स्थापित करने की चुनौती स्वीकार की है, उसने उत्साह, दृढ़ता और निष्कपटता के साथ यह काम किया है। मैं उन अधिकारियों के प्रयासों की भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूँ।

सुबीर गोकर्ण
उप गवर्नर

जुलाई 1, 2010